श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

UG- 11.29 षष्ठः सोपान

स्व धाम प्रस्थान को देखो हो रहे श्रीकृष्ण तैयार ।
उद्‌धृत किए उद्धव समक्ष अद्‌भुत अनमोल उद्‌गार ।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

एकादशः स्कन्धः

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

उद्धव उवाच

सुदुश्चरामिमां(म्) मन्ये, योगचर्यामनात्मनः ।
यथां(ञ्)जसा पुमान् सिद्ध्येत्, तन्मे ब्रूह्यं(ञ्)जसाच्युत॥ 1॥

उद्धव जी कहते हैं- 'अच्युत! जो अपना मन वश में नहीं कर सका है, उसके लिये आपकी बतलायी हुई इस योग साधना को तो मैं बहुत ही कठिन समझता हूँ। अतः अब आप कोई ऐसा सरल और सुगम साधन बतलाइये, जिससे मनुष्य अनायास ही परमपद प्राप्त कर सके।

प्रायशः(फ्) पुण्डरीकाक्ष, युं(ञ्)जन्तो योगिनो मनः ।

विषीदन्त्यसमाधानान्- मनोनिग्रहकर्शिताः ॥ 2॥

कमलनयन! आप जानते ही हैं कि अधिकांश योगी जब अपने मन को एकाग्र करने लगते हैं, तब वे बार-बार चेष्टा करने पर भी सफल न होने के कारण हार मान लेते हैं और उसे वश में न कर पाने के कारण दुःखी हो जाते हैं।

अथात आनन्ददुघं(म्) पदाम्बुजं(म्),

हं(म्)साः(श्) श्रयेरन्नरविन्दलोचन ।

सुखं(न्) नु विश्वेश्वर योगकर्मभिस्-

त्वन्माययामी विहता न मानिनः ॥ 3॥

इसलिए हे कमलनयन ब्रह्माण्ड के स्वामी, हंस सदृश व्यक्ति खुशी-खुशी आपके उन चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, जो समस्त दिव्य आनन्द के स्रोत हैं। किन्तु जिन्हें अपने योग तथा कर्म की उपलब्धियों पर गर्व है, वे आपकी शरण में नहीं आ पाते और आपकी मायाशक्ति द्वारा परास्त होते हैं।

किं(ञ्) चित्रमच्युत तवैतदशेषबन्धो,

दासेष्वनन्यशरणेषु यदात्मसात्त्वम् ।

योऽरोचयत् सह मृगैः(स्) स्वयमीश्वराणां(म्)

श्रीमत्किरीटतटपीडितपादपीठः ॥ 4॥

प्रभो! आप सबके हितैषी सुहृद् हैं। आप अपने अनन्य शरणागत बलि आदि सेवकों के अधीन हो जायें, यह आपके लिये कोई आश्चर्य की बात नहीं है; क्योंकि आपने रामावतार ग्रहण करके प्रेमवश वानरों से भी मित्रता का निर्वाह किया। यद्यपि ब्रह्मा आदि लोकेश्वरगण भी अपने दिव्य किरीटों को आपके चरणकमल रखने की चौकी पर रगड़ते रहते हैं।

तं(म्) त्वाखिलात्मदयितेश्वरमाश्रितानां(म्),

सर्वार्थदं(म्) स्वकृतविद् विसृजेत को नु ।

को वा भजेत् किमपि विस्मृतयेऽनु भूत्यै,

किं(वँ) वा भवेन्न तव पादरजोजुषां(न्) नः ॥ 5॥

प्रभो! आप सबके प्रियतम, स्वामी और आत्मा हैं। आप अपने अनन्य शरणागतों को सब कुछ दे देते हैं। आपने बलि-प्रह्लाद आदि अपने भक्तों को जो कुछ दिया है, उसे जानकर ऐसा कौन पुरुष होगा जो आपको छोड़ देगा? यह बात किसी प्रकार बुद्धि में ही नहीं आती कि भला, कोई विचारवान् विस्मृति के गर्त में डालने वाले तुच्छ विषयों में ही फँसा रखने वाले भोगों को क्यों चाहेगा? हम लोग आपके चरणकमलों की रज के उपासक हैं। हमारे लिये दुर्लभ ही क्या है?

नैवोपयन्त्यपचितिं(ङ्) कवयस्तवेश,

ब्रह्मायुषापि कृतमृद्धमुदः(स्) स्मरन्तः ।

योऽन्तर्बहिस्तनुभृतामशुभं(वँ) विधुन्वन्-

नाचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं(वँ) व्यनक्ति ॥ 6॥

भगवन्! आप समस्त प्राणियों के अन्तःकरण में अन्तर्यामीरूप से और बाहर गुरुरूप से स्थित होकर उनके सारे पाप-तप मिटा देते हैं और अपने अपने वास्तविक स्वरूप को उनके प्रति प्रकट कर देते हैं। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मा जी के समान लंबी आयु पाकर भी आपके उपकारों का स्मरण करके क्षण-क्षण अधिकाधिक आनन्द का अनुभव करते रहते हैं।

श्रीशुक उवाच

इत्युद्धवेनात्यनुरक्तचेतसा,

पृष्टो जगत्क्रीडनकः(स्) स्वशक्तिभिः ।

गृहीतमूर्तित्रय ईश्वरेश्वरो,

जगाद सप्रेममनोहरस्मितः ॥ 7॥

श्रीशुकदेव जी कहते हैं- परीक्षित! भगवान श्रीकृष्ण ब्रह्मादि ईश्वरों के भी ईश्वर हैं। वे ही सत्त्व-रज आदि गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करके जगत् की उत्पत्ति-स्थिति आदि के खेल खेला करते हैं। जब उद्धव जी ने अनुराग भरे चित्त से उनसे यह प्रश्न किया, तब उन्होंने मन्द-मन्द मुसकराकर बड़े प्रेम से कहना प्रारम्भ किया।

श्रीभगवानुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि, मम धर्मान् सुमं(ङ्)गलान् ।

या(ञ्)छ्रद्धयाऽऽचरन् मर्त्यो, मृत्युं(ञ्) जयति दुर्जयम् ॥ 8॥

श्रीभगवान ने कहा- प्रिय उद्धव! अब मैं तुम्हें अपने उन मंगलमय भागवत धर्मों का उपदेश करता हूँ, जिनका श्रद्धापूर्वक आचरण करके मनुष्य संसाररूप दुर्जय मृत्यु को अनायास ही जीत लेता है।

कुर्यात् सर्वाणि कर्माणि, मदर्थं(म्) शनकैः(स्) स्मरन् ।

मय्यर्पितमनश्चित्तो, मद्धर्मात्ममनोरतिः ॥ 9॥

उद्धव जी! मेरे भक्त को चाहिये कि अपने सारे कर्म मेरे लिये ही करे और धीरे-धीरे उनको करते समय मेरे स्मरण का अभ्यास बढ़ाये। कुछ ही दिनों में उसके मन और चित्त मुझमें समर्पित हो जायेंगे। उसके मन और आत्मा मेरे ही धर्मों में रम जायेंगे।

देशान् पुण्यानाश्रयेत, मद्भक्तैः(स्) साधुभिः(श्) श्रितान् ।

देवासुरमनुष्येषु, मद्भक्ताचरितानि च ॥ 10॥

मेरे भक्त साधुजन जिन पवित्र स्थानों में निवास करते हों, उन्हीं में रहे और देवता, असुर अथवा मनुष्यों में जो मेरे अनन्य भक्त हों, उनके आचरणों का अनुसरण करे।

पृथक् सत्रेण वा मह्यं(म्), पर्वयात्रामहोत्सवान् ।

कारयेद् गीतनृत्याद्यैर्- महाराजविभूतिभिः ॥ 11॥

पर्व के अवसरों पर सबके साथ मिलकर अथवा अकेला ही नृत्य, गान, वाद्य आदि महाराजोचित ठाट-बाट से मेरी यात्रा आदि के महोत्सव करे।

मामेव सर्वभूतेषु, बहिरन्तरपावृतम् ।

ईक्षेतात्मनि चात्मानं(यँ), यथा खममलाशयः ॥ 12॥

शुद्धान्तःकरण पुरुष आकाश के समान बाहर और भीतर परिपूर्ण एवं आवरणशून्य मुझ परमात्मा को ही समस्त प्राणियों और अपने हृदय में स्थित देखे।

इति सर्वाणि भूतानि, *मद्भावेन महाद्युते ।

सभाज*यन् *मन्यमानो, ज्ञानं(ङ्) केवलमाश्रितः ॥ 13॥

ब्राह्मणे *पुल्कसे स्तेने, ब्रह्म*ण्येऽर्के स्फुलिं(ङ्)गके।

*अक्रूरे क्रूरके चैव, समदृक् *पण्डितो मतः ॥ 14॥

निर्मलबुद्धि उद्धव जी! जो साधक केवल इस ज्ञान-दृष्टि का आश्रय लेकर सम्पूर्ण प्राणियों और पदार्थों में मेरा दर्शन करता है और उन्हें मेरा ही रूप मानकर सत्कार करता है तथा ब्राह्मण और चाण्डाल, चोर और ब्राह्मण भक्त, सूर्य और चिनगारी तथा कृपालु और क्रूर में समान दृष्टि रखता है, उसे ही सच्चा ज्ञानी समझना चाहिये।

नरेष्वभीक्ष्णं(म्) *मद्भावं(म्), पुं(म्)सो भावयतोऽचिरात् ।

स्पर्धासूयाति*रस्काराः(स्), साहं(ङ्)कारा वि*यन्ति हि ॥ 15॥

जब निरन्तर सभी नर-रानियों में मेरी ही भावना की जाती है, तब थोड़े ही दिनों में साधक के चित्त से स्पर्द्धा (होड़), ईर्ष्या, तिरस्कार और अहंकार आदि दोष दूर हो जाते हैं।

वि*सृज्य* स्मयमानान् स्वान्, दृशं(वँ) व्रीडां(ञ्) च दैहिकीम् ।

प्रणमेद् *दण्ड*वद् भूमा- वाश्वचाण्डालगोखरम् ॥16॥

अपने ही लोग यदि हँसी करें तो करने दे, उनकी परवा न करे; ‘मैं अच्छा हूँ, वह बुरा है’ ऐसी देहदृष्टि को और लोक-लज्जा को छोड़ दे और कुत्ते, चाण्डाल, गौ एवं गधे को भी पृथ्वी पर गिरकर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करे।

यावत् सर्वेषु भूतेषु, *मद्भावो नोपजायते ।

तावदेवमुपासीत, वाङ्मनः(ख्)कायवृत्तिभिः ॥ 17॥

जब तक समस्त प्राणियों में मेरी भावना-भगवद्भावना न होने लगे, तब तक इस प्रकार से मन, वाणी और शरीर के सभी संकल्पों और कर्मों द्वारा मेरी उपासना करता रहे।

सर्वं(म्) ब्रह्मात्मकं(न्) *तस्य, वि*द्ययाऽऽत्ममनीषया ।

परि*पश्यन्नुपरमेत्, सर्वतो *मुक्तसं(म्)शयः ॥ 18॥

उद्धव जी! जब इस प्रकार सर्वत्र आत्मबुद्धि-ब्रह्मबुद्धि का अभ्यास किया जाता है, तब थोड़े ही दिनों में उसे ज्ञान होकर सब कुछ ब्रह्मस्वरूप दीखने लगता है। ऐसी दृष्टि हो जाने पर सारे संशय-सन्देह अपने-आप निवृत्त हो जाते हैं और वह सब कहीं मेरा साक्षात्कार करके संसार दृष्टि से उपराम हो जाता है।

अयं(म्) हि सर्वकल्पानां(म्), सध्रीचीनो मतो मम ।

मद्भावः(स्) सर्वभूतेषु, मनोवाक्कायवृत्तिभिः ॥ 19॥

मेरी प्राप्ति के जीतने साधन हैं, उनमें मैं तो सबसे श्रेष्ठ साधन यही समझता हूँ कि समस्त प्राणियों और पदार्थों में मन, वाणी और शरीर की समस्त वृत्तियों से मेरी ही भावना की जाये।

न ह्यं(ङ्)गोपक्रमे ध्वं(म्)सो, मद्धर्मस्योद्धवाण्वपि ।

मया व्यवसितः(स्) सम्यङ्- निर्गुणत्वादनाशिषः ॥ 20॥

उद्धव जी! यही मेरा अपना भागवत धर्म है; इसको एक बार आरम्भ कर देने के बाद फिर किसी प्रकार की विघ्न-बाधा से इसमें रत्तीभर भी अन्तर नहीं पड़ता; क्योंकि यह धर्म निष्काम है और स्वयं मैंने ही इसे निर्गुण होने के कारण सर्वोत्तम निश्चय किया है।

यो यो मयि परे धर्मः(ख्), कल्प्यते निष्फलाय चेत् ।

तदायासो निरर्थः(स्) स्याद्, भयादेरिव सत्तम ॥ 21॥

भागवत धर्म में किसी प्रकार की त्रुटि पड़नी तो दूर रही-यदि इस धर्म का साधन भय-शोक आदि के अवसर पर होने वाली भावना और रोने-पीटने, भागने-जैसा निरर्थक कर्म भी निष्काम भाव से मुझे समर्पित कर दे तो वे भी मेरी प्रसन्नता के कारण धर्म बन जाते हैं।

एषा बुद्धिमतां(म्) बुद्धिर्- मनीषा च मनीषिणाम् ।

यत् सत्यमनृतेनेह, मर्त्येनाप्नोति मामृतम् ॥ 22॥

विवेकियों के विवेक और चतुरों की चतुराई की पराकाष्ठा इसी में है कि वे इस विनाशी और असत्य शरीर के द्वारा मुझ अविनाशी एवं सत्य तत्त्व को प्राप्त कर लें

एष तेऽभिहितः(ख्) कृत्स्नो, ब्रह्मवादस्य सङ्ग्रहः।

समासव्यासविधिना, देवानामपि दुर्गमः ॥ 23॥

उद्धव जी! यह सम्पूर्ण ब्रह्मविद्या का रहस्य मैंने संक्षेप और विस्तार से तुम्हें सुना दिया। इस रहस्य को समझना मनुष्यों की तो कौन कहे, देवताओं के लिये भी अत्यन्त कठिन है।

अभीक्ष्णशस्ते गदितं(ञ्), ज्ञानं(वँ) विस्पष्टयुक्तिमत् ।

एतद् विज्ञाय मुच्येत, पुरुषो नष्ट संं(म्)शयः॥ 24॥

मैंने जिस सुस्पष्ट और युक्तियुक्त ज्ञान का वर्णन बार-बार किया है, उसके मर्म को जो समझ लेता है, उसके हृदय की संशय-ग्रंथियाँ छिन्न-भिन्न हो जाती हैं और वह मुक्त हो जाता है।

सुविविक्तं(न्) तव प्रश्नं(म्), मयैतदपि धारयेत् ।

सनातनं(म्) ब्रह्मगुह्यं(म्), परं(म्) ब्रह्माधिगच्छति ॥ 25॥

मैंने तुम्हारे प्रश्न का भलीभाँति खुलासा कर दिया; जो पुरुष हमारे प्रश्नोत्तर को विचारपूर्वक धारण करेगा, वह वेदों के भी परम रहस्य सनातन परब्रह्म को प्राप्त कर लेगा।

य एतन्मम भक्तेषु, सम्प्रदद्यात् सुपुष्कलम् ।

तस्याहं(म्) ब्रह्मदायस्य, ददाम्यात्मानमात्मना ॥ 26॥

जो पुरुष मेरे भक्तों को इसे भलीभाँति स्पष्ट करके समझायेगा, उस ज्ञानदाता को मैं प्रसन्न मन से अपना स्वरूप तक दे डालूँगा, उसे आत्मज्ञान करा दूँगा।

य एतत् समधीयीत, पवित्रं(म्) परमं(म्) शुचि ।

स पूयेताहरहर्मां(ञ्), ज्ञानदीपेन दर्शयन् ॥ 27॥

उद्धव जी! यह तुम्हारा और मेरा संवाद स्वयं तो पवित्र है ही, दूसरों को भी पवित्र करने वाला है। जो प्रतिदिन इसका पाठ करेगा और दूसरों को सुनायेगा, वह इस ज्ञानदीप के द्वारा दूसरों को मेरा दर्शन कराने के कारण पवित्र हो जायेगा।

य एतच्छ्रद्धया नित्यमव्यग्रः(श्) शृणुयान्नरः ।

मयि भक्तिं(म्) परां(ङ्) कुर्वन्, कर्मभिर्न स बध्यते ॥ 28॥

जो कोई एकाग्रचित्त से इसे श्रद्धापूर्वक नित्य सुनेगा, उसे मेरी पराभक्ति प्राप्त होगी और वह कर्मबन्धन से मुक्त हो जायेगा।

अप्युद्धव त्वया ब्रह्म, सखे समवधारितम् ।

अपि ते विगतो मोहः(श्), शोकश्चासौ मनोभवः ॥ 29॥

प्रिय सखे! तुमने भलीभाँति ब्रह्म का स्वरूप समझ लिया न? और तुम्हारे चित्त का मोह एवं शोक तो दूर हो गया न?

नैतत्त्वया दाम्भिकाय, नास्तिकाय शठाय च ।

अशुश्रूषोरभक्ताय, दुर्विनीताय दीयताम् ॥ 30॥

तुम इसे दाम्भिक, नास्तिक, शठ, अश्रद्धालु, भक्तिहीन और उद्धत पुरुष को कभी मत देना।

एतैर्दोषैर्विहीनाय, ब्रह्मण्याय प्रियाय च ।

साधवे शुचये ब्रूयाद्, भक्तिः(स्) स्याच्छूद्रयोषिताम् ॥ 31॥

जो इन दोषों से रहित हो, ब्राह्मण भक्त हो, प्रेमी हो, साधुस्वभाव हो और जिसका चरित्र पवित्र हो, उसी को यह प्रसंग सुनाना चाहिये। यदि शूद्र और स्त्री भी मेरे प्रति प्रेम-भक्ति रखते हों तो उन्हें भी इसका उपदेश करना चाहिये।

नैतद् विज्ञाय जिज्ञासोर्- ज्ञातव्यमवशिष्यते।

पीत्वा पीयूषममृतं(म्), पातव्यं(न्) नावशिष्यते ॥ 32॥

जैसे दिव्य अमृत पान कर लेने पर कुछ भी पीना शेष नहीं रहता, वैसे ही यह जान लेने पर जिज्ञासु के लिये और कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।

ज्ञाने कर्मणि योगे च, वार्तायां(न्) दण्डधारणे ।

यावानर्थो नृणां(न्) तात, तावां(स्)स्तेऽहं(ञ्) चतुर्विधः ॥ 33॥

प्यारे उद्धव! मनुष्यों को जो ज्ञान, कर्म, योग, वाणिज्य और राजदण्डादि से क्रमशः मोक्ष, धर्म, काम और अर्थरूप फल प्राप्त होते हैं; परन्तु तुम्हारे-जैसे अनन्य भक्तों के लिये वह चारों प्रकार का फल केवल मैं ही हूँ।

मर्त्यो यदा त्यक्तसमस्तकर्मा,

निवेदितात्मा विचिकीर्षितो मे ।

तदामृतत्वं(म्) प्रतिपद्यमानो,

मयाऽऽत्मभूयाय च कल्पते वै ॥ 34॥

जिस समय मनुष्य समस्त कर्मों का परित्याग करके मुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उस समय वह मेरा विशेष माननीय हो जाता है और मैं उसे उसके जीवत्व से छुड़ाकर अमृतस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति करा देता हूँ और वह मुझसे मिलकर मेरा स्वरूप हो जाता है।

श्रीशुक उवाच

स एवमादर्शितयोगमार्ग-

स्तदोत्तमश्लोकवचो निशम्य ।

बद्धां(ञ्)जलिः(फ्) प्रीत्युपरुद्धकण्ठो,

न किं(ञ्)चिदूचेऽश्रुपरिप्लुताक्षः ॥ 35॥

श्रीशुकदेव जी कहते हैं- परीक्षित! अब उद्धव जी योगमार्ग का पूरा-पूरा उपदेश प्राप्त कर चुके थे। भगवान श्रीकृष्ण की बात सुनकर उनकी आँखों में आँसू उमड़ आये। प्रेम की बाढ़ से गला रूँध गया, चुपचाप हाथ जोड़े रह गये और वाणी से कुछ बोला न गया।

विष्टभ्य चित्तं(म्) प्रणयावघूर्णं(न्),

धैर्येण राजन् बहु मन्यमानः।

कृतां(ञ्)जलिः प्राह यदुप्रवीरं(म्),

शीर्ष्णा स्पृशं(म्)स्तच्चरणारविन्दम्॥ 36॥

उनका चित्त प्रेमावेश से विह्वल हो रहा था, उन्होंने धैर्यपूर्वक उसे रोका और अपने को अत्यन्त सौभाग्यशाली अनुभव करते हुए सिर से यदुवंशशिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण के चरणों को स्पर्श किया तथा हाथ जोड़कर उनसे यह प्रार्थना की।

उद्धव उवाच

विद्रावितो मोहमहान्धकारो,

य आश्रितो मे तव सन्निधानात् ।

विभावसोः(ख्) किं(न्) नु समीपगस्य,

शीतं(न्) तमो भीः(फ्) प्रभवन्त्यजाद्य ॥ 37॥

उद्धव जी ने कहा-'प्रभो! आप माया और ब्रह्म आदि के भी मूल कारण हैं। मैं मोह के महान् अन्धकार में भटक रहा था। आपके सत्संग से वह सदा के लिये भाग गया। भला, जो अग्नि के पास पहुँच गया उसके सामने क्या शीत, अन्धकार और उसके कारण होने वाला भय ठहर सकते हैं?

प्रत्यर्पितो मे भवतानुकम्पिना,

भृत्याय विज्ञानमयः(फ्) प्रदीपः ।

हित्वा कृतज्ञस्तव पादमूलं(ङ्),

कोऽन्यत् समीयाच्छरणं(न्) त्वदीयम् ॥ 38॥

भगवन्! आपकी मोहिनी माया ने मेरा ज्ञानदीपक छीन लिया था, परन्तु आपने कृपा करके वह फिर अपने सेवक को लौटा दिया। आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह की वर्षा की है। ऐसा कौन होगा, जो आपके इस कृपा-प्रसाद का अनुभव करके भी आपके चरणकमलों की शरण छोड़ दे और किसी दूसरे का सहारा ले?

वृक्णश्च मे सुदृढः(स्) स्नेहपाशो,

दाशार्हवृष्ण्यन्धकसात्वतेषु ।

प्रसारितः(स्) सृष्टिविवृद्धये त्वया,

स्वमायया ह्यात्मसुबोधहेतिना ॥ 39॥

आपने अपनी माया से सृष्टि वृद्धि के लिये दशार्ह, वृष्णि, अन्धक और सात्वतवंशी यादवों के साथ मुझे सुदृढ़ स्नहे-पाश से बाँध दिया था। आज आपने आत्मबोध की तीखी तलवार से उस बन्धन को अनायास ही काट डाला।

नमोऽस्तु ते महायोगिन्, प्रपन्नमनुशाधि माम् ।

यथा त्वच्चरणाम्भोजे, रतिः(स्) स्यादनपायिनी ॥ 40॥

महायोगेश्वर! मेरा आपको नमस्कार है। अब आप कृपा करके मुझ शरणागत को ऐसी आज्ञा दीजिये, जिससे आपके चरणकमलों में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे।

श्रीभगवानुवाच

गच्छोद्धव मयाऽऽदिष्टो, बदर्याख्यं(म्) ममाश्रमम् ।

तत्र मत्पादतीर्थोदे, स्नानोपस्पर्शनैः(श्) शुचिः ॥ 41॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- उद्धव जी! अब तुम मेरी आज्ञा से बदरीवन में चल जाओ। वह मेरा ही आश्रम है। वहाँ मेरे चरणकमलों के धोवन गंगा-जल का स्नानपान के द्वारा सेवन करके तुम पवित्र हो जाओगे।

ईक्षयालक*नन्दाया, विधूताशेष*कल्मषः ।

वसानो *वल्कलान्यं(ङ्)ग, *वन्यभुक् सुखनिः(स्)स्पृहः ॥ 42॥

अलकनन्दा के दर्शन मात्र से तुम्हारे सारे पाप-ताप नष्ट हो जायेंगे। प्रिय उद्धव! तुम वहाँ वृक्षों की छाल पहनना, वन के कन्द-मूल-फल खाना और किसी भोग की अपेक्षा न रखकर निःस्पृह-वृत्ति से अपने-आप में मस्त रहना।

तिति*क्षुर्द्वन्द्वमात्राणां(म्) सुशीलः(स्) सं(यँ)यतेन्द्रियः।

शान्तः(स्) समाहितधिया, ज्ञानवि*ज्ञानसं(यँ)युतः ॥ 43॥

सर्दी-गरमी, सुख-दुःख-जो कुछ आ पड़े, उसे सम रहकर सहना। स्वभाव सौम्य रखना, इन्द्रियों को वश में रखना। चित्त शान्त रहे। बुद्धि समाहित रहे और तुम स्वयं मेरे स्वरूप के ज्ञान और अनुभव में डूबे रहना।

मत्तोऽनु*शिक्षितं(यँ) यत्ते, विवि*क्तमनुभावयन् ।

मय्यावेशितवाक्चित्तो, *मद्धर्मनिरतो भव ।

अति**व्रज्य गतीस्ति*स्रो, मामेष्यसि ततः(फ्) परम् ॥ 44॥

मैंने तुम्हें जो कुछ शिक्षा दी है, उसका एकान्त में विचारपूर्वक अनुभव करते रहना। अपनी वाणी और चित्त मुझ में ही लगाये रहना और मेरे बतलाये हुए भागवत धर्म में प्रेम से रम जाना। अन्त में तुम त्रिगुण और उनसे सम्बन्ध रखने वाली गतियों को पार करके उनसे परे मेरे परमार्थस्वरूप में मिल जाओगे।

श्रीशुक उवाच

स एव*मुक्तो हरिमेधसोद्धवः(फ्),

प्र*दक्षिणं(न्) तं(म्) परि*सृत्य पादयो ॥

शिरो निधायाश्रुकलाभिरार्द्रधीर्-

न्यषिं(ञ्)च*दद्वन्द्वपरोऽप्यप*क्रमे ॥45॥

श्रीशुकदेव जी कहते हैं- परीक्षित! भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप का ज्ञान संसार के भेदभ्रम को छिन्न-भिन्न कर देता है। जब उन्होंने स्वयं उद्धव जी को ऐसा उपदेश किया तो उन्होंने उनकी परिक्रमा की और उनके चरणों पर सिर रख दिया। इसमें सन्देह नहीं कि उद्धव जी संयोग-वियोग से होने वाले सुख-दुःख के जोड़े से परे थे, क्योंकि वे भगवान के निर्द्वंद चरणों की शरण ले चुके थे; फिर भी वहाँ से चलते समय उनका चित्त प्रेमोवेश से भर गया। उन्होंने अपने नेत्रों की झरती हुई अश्रुधारा से भगवान के चरणकमलों को भिगो दिया।

सुदुस्त्यजस्नेहवियोगकातरो,

न शक्नुवं(म्)स्तं(म्) परिहातुमातुरः ।

कृच्छ्रं(यँ) ययौ मूर्धनि भर्तृपादुके,

बिभ्रन्नमस्कृत्य ययौ पुनः(फ्)पुनः ॥ 46॥

परीक्षित! भगवान के प्रति प्रेम करके उसका त्याग करना सम्भव नहीं है। उन्हीं के वियोग की कल्पना से उद्धव जी कातर हो गये, उनके त्याग करने में समर्थ न हुए। बार-बार विह्वल होकर मुर्च्छित होने लगे। कुछ समय के बाद उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण के चरणों की पादुकाएँ अपने सिर पर रख लीं और बार-बार भगवान के चरणों में प्रणाम करके वहाँ से प्रस्थान किया।

ततस्तमन्तर्हृदि सं(न्)निवेश्य,

गतो महाभागवतो विशालाम् ।

यथोपदिष्टां(ञ्) जगदेकबन्धुना,

तपः(स्) समास्थाय हरेरगाद् गतिम् ॥ 47॥

भगवान के परमप्रेमी भक्त उद्धव जी हृदय में उनकी दिव्य छवि धारण किये बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ उन्होंने तमोमय जीवन व्यतीत करके जगत् के एकमात्र हितैषी भगवान श्रीकृष्ण के उपदेशानुसार उनकी स्वरूपभूत परमगति प्राप्त की।

य एतदानन्दसमुद्रसम्भृतं(ञ्),

ज्ञानामृतं(म्) भागवताय भाषितम् ।

कृष्णेन योगेश्वरसेविताङ्घ्रिणा,

सच्छ्रद्धयाऽऽसेव्य जगद् विमुच्यते ॥ 48॥

भगवान शंकर आदि योगेश्वर भी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा किया करते हैं। उन्होंने स्वयं श्रीमुख से अपने परमप्रेमी भक्त उद्धव के लिये इस ज्ञानामृत का वितरण किया। यह ज्ञानामृत आनन्द महासागर का सार है। जो श्रद्धा के साथ इसका सेवन करता है, वह तो मुक्त हो ही जाता है, उसके संग से सारा जगत् मुक्त हो जाता है।

भवभयमपहन्तुं(ञ्) ज्ञानविज्ञानसारं(न्),

निगमकृदुपजह्रे भृं(ङ्)गवद् वेदसारम् ।

अमृतमुदधितश्चापाययद् भृत्यवर्तान्,

पुरुषमृषभमाद्यं(ङ्) कृष्णसं(ञ्)ज्ञं(न्) नतोऽस्मि ॥ 49॥

परीक्षित! जैसे भौरा विभिन्न पुष्पों से उनका सार-सार मधु संग्रह कर लेता है, वैसे ही स्वयं वेदों को प्रकाशित करने वाले भगवान श्रीकृष्ण ने भक्तों को संसार से मुक्त करने के लिये यह ज्ञान और विज्ञान का सार निकाला है। उन्होंने जरा-रोगादि भय की निवृत्ति के लिये क्षीर-समुद्र से अमृत भी निकाला था। इन्हें क्रमशः अपने निवृत्तिमार्गी और प्रवृत्तिमार्गी भक्तों को पिलाया, वे ही पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण सारे जगत् के मूल कारण हैं। मैं उनके चरणों में नमस्कार करता हूँ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितायामेकादशस्कन्धे एकोनत्रिं(म्)शोऽध्यायः ॥